

## मामेकंशरणं व्रज

ओम तत्सदात्मने नमः

श्रृंगी ऋषि अलौकिक पैदा हुआ था। कोई हिरनी गर्भवती होने वाली थी, उसे वह देख रहा था। उसके संस्कार उसमें आ गए-वह बड़ा अच्छा योगी होने वाला था। उस हिरनी के गर्भ में चला गया। पैदा हुआ, तो आदमी के आकार का था। विभांडक ऋषि उसे ले लिए। पालन-पोषण किया-बड़ा हो गया। उसे दुनिया के मोह से, कभी परिचित नहीं होने दिया गया। जंगल में कुटिया में रखते थे, कंदमूल खिलाते थे। दुनियादारी कुछ नहीं जानता था। जवान हो गया। ऋषि दो घंटे के लिए कुटिया से बाहर जाते थे। कंदमूल फल ले आते-स्वयं खाते, उसे खिलाते।

अब इधर - क्या हुआ, कि बनारस के राजा के राज्य में बहुत दिनों तक पानी नहीं हुआ, अकाल पड़ गया। पंडितों को बुलाया-राजा बड़ा धर्मात्मा था। पूछा पंडितों से, कि आप लोग बताइए, कि हमारे राज्य में पानी कैसे बरसेगा? पंडितों ने गणित लगाया और बताया कि अगर श्रृंगी ऋषि को राज्य के अन्दर ले आया जाय, तो पानी बरस सकता है। तो बड़ी भारी सभा बुलाई गई। विचार हुआ कि श्रृंगी ऋषि को कैसे लाया जा सकता है-विभांडक ऋषि उसे हमेशा देखते रहते हैं। नहीं आने देंगे। शाप दे देंगे। अनेक लोगों ने अलग-अलग बातें रखीं। तो रंडी थी एक बड़ी सभ्य। उसने कहा, कि सरकार, अगर हुकुम हो, तो हम ला सकते हैं। तो एक नाव दिया गया उसे, दो-चार भंडुवा और धीरे-धीरे पंद्रह-पचास लोग पहुंचे जंगल में। लगा दिया नाव गंगा के किनारे। कुटिया से 2 किमी. की दूरी पर। और एक पेड़ पर धागे से जलेबी वगैरह बांधकर टांग दिये। लड्डू, पेड़ा, रसगुल्ला, सब बांध दिए। और फिर जब देखा, कि कुटिया में श्रृंगी ऋषि अकेले हैं-तो पहुंच गई दो चार को साथ में लेकर। जैसे देखे श्रृंगी ऋषि, तो साष्टांग दंडवत को गिरे। बोले, महाराज कहां से पधारे आप? ऐसा सुंदर महात्मा तो हम कभी देखे नहीं। महात्मा लोग तो ऐसे रहते हैं-विभूती वगैरह लगाए, रुखे-सूखे। और वह चिकनी चुपड़ी। देखा तो फिदा हो गए। बोले, बड़े सुन्दर महात्मा का दर्शन करके, हमारा तो कल्याण हो गया। तो वह बोली, ऐसे कल्याण नहीं- हम ऐसे देश के महात्मा हैं, कि लो हमारे देश के ये फल खाओ-ये क्या कंदमूल खाते हो? लो खाओ। एक रसगुल्ला दिया। जहाँ खाया तो ऊपर की सांस ऊपर ही रह गई, बाबा की। बोले, देखो ये हमारे देश का कंद है। तो बस ऐसे रोज खवाय आवें। तो विभांडक बोले, क्या बात है भाई, तेरी पागल जैसी हालत है-आंखे चढ़ी-चढ़ी हैं। क्या बात है? तो बोले महाराज, आज ऐसे

महात्मा के दर्शन हुए हैं, कि भगवान कोई चीज़ नहीं है उसके सामने। बाबा बोले, कौन ऐसा महात्मा आ गया? तुझे नष्ट होना है क्या? कैसा महात्मा रहा? तो बताया सब। तो गुरु बाबा ने कहा, अरे! ये राक्षस तुझे मार डालेंगे। तू हमारी मेहनत पर पानी फेर देगा क्या? डांटा। लेकिन उसे तो रस मिल गया था। फिर वे लोग आए, ले गए श्रृंगी ऋषि को वह पेड़ दिखाया। बोले देखो, खाओ इन्हें, तोड़ो। जहाँ खाया-कहा, अरे यह तो बहुत अच्छा है। धीरे-धीरे, लहा-बिहा कर ले, गए नाव में बनारस। गंगा की धार में, सनसनाती हुई नाव पहुँच गई। तो ले जाकर राजा के यहां, सिंहासन पर बैठाया। इधर विभांडक ऋषि अपने चेला को खोजते, भारी क्रोध करते हुए चले। कि जो भी ले गया है, चाहे राजा हो या प्रजा, उसे भस्म कर दूंगा। तमाम राजा के लोग, रास्ते में ही उनको प्रणामादि आदर सत्कार से संतुष्ट करते हुए लाए। तो देखा, चेला सिंहासन पर बैठे हैं। वहीं पास में वह वेश्या भी थी। देखकर विभांडक ने कहा वाह बेटा, अच्छा काम है तेरा। साक्षात् लक्ष्मी के बगल में हो। तुम तो विष्णु हो गए। तपस्या हमने किया, फल पाए तुम।

इस प्रकार, मन के ऊपर असर हो जाता है। मन एक ऐसी जगह है, जहाँ सत् असत् सभी प्रकार के विचार आते हैं। तरह-तरह के संकल्प-विकल्प आते हैं। यदि हम उन्हें देख नहीं पाते हैं, तो क्या होगा? चिंतवन रुकेगा नहीं, तो अंतःकरण शुद्ध कैसे होगा? अन्तःकरण तो ऐसी जगह है, जो चिंतवन होने से अशुद्ध होती है। चिंतवन कम होते जाएंगे, तो शुद्ध होता जायेगा। जैसे-तैसे चिंतवन बढ़ता है, वैसे-वैसे अशुद्ध होता है। ये इंगला और पिंगला दोनों रेल की पटरी जैसी हैं। इच्छा इनमें रेल जैसी है। संकल्प विकल्प डिब्बे जैसे हैं और चिंतवन यात्री जैसे हैं। और हृदय या अंतःकरण स्टेशन जैसा है। स्टेशन पर यात्री उतरते हैं, भीड़ होती है। तमाम देहाती आदमी, कोई थूकता है, तमाम गंदा कर देते हैं। इसी प्रकार ये मन के चिंतवन, हमारे हृदय को अन्तःकरण को गंदा कर देंगे। जब चिंतवन से हम इस अंतःकरण को गंदा कर देंगे, तो भगवान कैसे इसमें रहेंगे? यह हृदय तो भगवान का घर है—

### **तेरे पूजन को भगवान। बना मन मंदिर आलीशान।।**

इसलिए इस अंतःकरण को गंदा होने से बचाएं। चिंतवन से यह गंदा होता है। इसलिए मन से कहें, कि भइया! तुमने खूब विषय भोग कर लिया है, चित्त से कहें कि तुमने खूब चिंतवन कर लिया अब भगवान का चिंतवन करो, अब ईश्वर का चिंतवन करो। बुद्धि से कहो कि अब ईश्वर का निश्चय करे। भगवान से कहो कि भगवान हम मर जाएंगे। लेकिन आपको छोड़ेंगे नहीं। जब ये चारों अन्तःकरण दृढ़

निश्चय करके, भगवान के पीछे पड़ जाएंगे। तो मेरे विचार से साधक को जरूर सफलता मिल सकती है। और अगर थोड़ी भी सफलता मिल जाय, तो नियम यह है, कि किसी रोगी को किसी औषधि से थोड़ा फायदा मिल जाय, तो उसे औषधि नहीं छोड़नी चाहिए। औषधि लेते रहना चाहिए। फिर धीरे-धीरे आराम मिल जायगा। इसी प्रकार, किसी भी साधन से नाम है, रूप है, लीला है, धाम से है। और बैखरी से मध्यमा पश्यंती से परा से है। भजन से, या सेवा से, किसी तरह से है, अगर अन्तःकरण को शुद्ध करने में मदद मिलती है, तो उसमें लग जाना चाहिए। शरीर तो फिर मिल जायगा। यह बहुत कीमती चीज़ नहीं है। हमें यह समझना पड़ेगा, कि विघ्न तो आएंगें ही। चिंतवन आएंगे, रोग आएंगे, भगवान परीक्षा तो लेंगे ही। अशान्ति आ सकती है। इसलिए हमें यह समझना चाहिए, कि साधन करने से हमारी समझ बढ़ी है। तो उस साधन को नहीं छोड़ना चाहिए। उस जुगत को नहीं छोड़ना चाहिए। साधक जब कुछ आगे बढ़ जाता है, तो ऐसी दिक्कतें आ सकती हैं। इसलिए शास्त्र में भी आया है—

**व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरतिभ्रान्तिदर्शनालब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वानि  
चित्त्वविक्षेपास्तेऽन्तरायाः ॥**

व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति भ्रान्ति दर्शन, अलब्ध भूमिका और अनवस्थितत्व इत्यादि विक्षेप आते हैं। शरीर की दिक्कतें आती हैं। कोई बीमार हो गया तो उसे दवा दी जाती है, अस्पताल पहुँचाते हैं। यह तो हम लोगों का काम है, समाज का काम है। जो रहते हैं तुम्हारे पास, उनका काम है। यह तुम्हारा काम नहीं है कि तुम कहो, कि बीमार हो गए हैं, इलाज करो और हमारा इन्तजाम करो। शरीर के लिए बहुत चिन्ता करना, यह साधक का काम नहीं है। इस तरह परेशान हो जाना, अच्छे साधक का लक्षण नहीं है। यह गलत है। इससे यह पहचान होगी, कि तुम साधन नहीं कर सकते। ऐसे नहीं होते, साधक के लक्षण। साधक का लक्षण तो अनपेक्षता है। अच्छा साधक, अनपेक्ष भाव से भगवान से विनय करे, कि हे भगवान मैं इतना पापी हूँ। इतनी खराबी है मुझमें, कि मैं थोड़ा भजन में लगा और इतनी पहाड़ जैसी परीक्षाओं में आपने डाल दिया। मैं इतना सक्षम नहीं हूँ। मुझ पर दया करो। ऐसे विनय करना चाहिए। करुणा करनी चाहिए, अनुराग करना चाहिए। चिंता मन को पकड़ लेगी तो भजन छूट जायेगा। इसलिए भगवान की इच्छा पर सब छोड़कर भजन में लगे रहो।

इस तरह यह मन बदल जाता है। बेइमानी करना छोड़ देता है। अनुकूल हो जाता है। इसे बदलने का एक ही उपाय है, कि जो वंदनीय महापुरुष हैं, उनका आदर करना चाहिए और साधक को उनकी शरण में रहकर, साधना करना चाहिए।

गोरखनाथ बहुत अच्छे महापुरुष हुए, 9वीं 10वीं शताब्दी में। उन्होंने अपना एक सिद्धान्त बनाया, कि साधन-भजन, सभी को कराना ठीक नहीं रहता। सभी महात्मा नहीं हो सकते। उचित पात्र हो, जैसे राजा-जो सारे सुख, भोगों को भोग लिए रहते हैं, माया क्षेत्र के। इसलिए उन्हें ये आकर्षण फँसा नहीं पाते। जो गरीबी से आते हैं, उनके मन में पुरानी कामनाएँ बनी रहती हैं-घर होता, धन होता, इत्यादि। तो साधना में दिक्कतें आएंगी। और बड़े लोगों के साथ ये दिक्कतें नहीं आती। जैसे गौतम बुद्ध।

तो वह (गोरखनाथ) साधुओं की जमात लेकर चलते। राजाओं के यहां आते, उनके साथ हजारों साधु रहते। जमात पड़ जाये। राजा लोग उनकी ख्याति के अनुरूप उनका स्वागत सम्मान करते थे। साधुओं की जमात रुक गई, छन रही है, घुट रही है। गुरु गोरखनाथ के संसर्ग से कई राजा विरक्त हुए। भरथरी, गोपीचन्द आदि कई को ला-ला कर उन्होंने महात्मा बना दिया।

ऐसे ही एक मर्तबा कभी, राजा भरथरी के यहाँ पहुँचे। खबर लगी, तो राजा डाली लगाकर, फलफूल भेंटलेकर आया, प्रणाम किया। गोरखनाथ बोले, तुम अच्छे राजा हो, लो, हम तुम्हें यह फल देते हैं। इसे खालोगे, तो तुम अमर हो जाओगे। तुम बड़े अच्छे राजा हो, तुम्हें सब चाहते हैं। राजा फल लेकर महल में आया, और सोचा क्यों न यह फल मैं अपनी रानी को दे दूँ। वह खाकर अमर हो जायेगी, यह ठीक रहेगा। रानी को फल दिखाया और कहा, देखो यह फल महात्मा जी ने मुझे दिया है, और कहा है कि जो इस फल को खाएगा, अमर हो जाएगा। मैं चाहता हूँ कि तुम इसे खालो। और अमर हो जाओ, तुम मुझे बहुत प्रिय हो। रानी ने फल लेकर रख लिया, बोली अच्छी बात है, खा लूँगी। उस रानी का एक शहर कोतवाल से लगाव था। वह आता जाता था, उसके पास। रानी ने वह फल उस कोतवाल को दे दिया, और जब राजा ने पूछा, तो “मैंने खा लिया है” कह दिया। अब उस कोतवाल का, एक रंडी से प्रेम था, तो उसने वह फल, उस रंडी को दे दिया। रंडी ने ले तो लिया, लेकिन होशियार थी। उसने सोचा, मैं फल खाकर अमर होकर क्या करूँगी। सब दिन के लिए यह नारकी-जीवन क्यों भोगूँ! हमारे राजा बहुत अच्छे हैं। अगर वह फल खाकर अमर हो जायें, तो प्रजा का कल्याण करते रहेंगे। तो उसने

डाली सजाया, और फल-फूल लेकर राजा से मिलने गई। कहा, महाराज आप बड़े अच्छे राजा हैं। यह फल एक महात्मा का दिया हुआ है। इसे आप खा लेंगे तो अमर हो जाएंगे और प्रजा का हित करते रहेंगे। “राजा ने फल देखा तो सन्न रह गया। यह तो वही फल है। फल लेकर क्रोध से भरा सीधे महल में पहुँचा, और रानी से पूछा, वह फल तो तुमने खा लिया था। रानी ने झट से कहा-“हाँ-हाँ मैंने खा लिया था।” राजा ने फल दिखाते हुए कहा,” तो फिर यह कहाँ से आया।” और मंगा कर कोड़ा, पचास कोड़े लगाया। एक तो मुलायम शरीर, हाय-हाय! चिल्लाहट मच गई। फिर पूछा, “किसे दिया था ?” तो बताया, ‘कोतवाल को।’ बुलाकर उसे भी खूब पिटाई की। मारमार कर बेदम कर दिया, फिर पूछा, “तुमने यह फल किसे दिया था ?” तो बताया, “वेश्या को।” अब राजा के अन्दर वैराग्य आया। और सब छोड़-छाड़कर गुरु गोरखनाथ की शरण में गया।

इस तरीके से त्याग होना चाहिए। क्या नहीं हो सकता, अगर त्याग किया जाये। इतनी बड़ी आसक्ति का त्याग। जानते हो, जितनी ज़्यादा आसक्ति पहले रहती है, उसी रेश्यू (अनुपात) में त्याग का लाभ होता है। गेंद जितनी जोर से नीचे पटका जाता है, उतना ज़्यादा ऊपर उछल मारता है। जितना ज़्यादा त्याग करेगा उतना ही ज़्यादा साधन में आगे-आगे बढ़ेगा।

इसी प्रकार गोपीचन्द भी गोरखनाथ की सेवा में आए। सेवा करने लगे। बारह साल तक सेवा में रखे। फिर एक दिन बोले, “इधर आओ गोपीचन्द। देखो तुम्हारे घर में तुम्हारी माँ है, स्त्री है, बच्चा है। तो जाओ घर जाओ और वहाँ से भिक्षा लेकर आओ। हम तेरी परीक्षा ले रहे हैं। देखो वहाँ रोना नहीं। तेरे बच्चे, माँ सभी रोएंगे तुझे देखकर। तो तुम्हारी आँखों में आंसू नहीं आना चाहिए। तुम्हें कोई दिक्कत नहीं होनी चाहिए। मेरा ज्ञान जो तुमने लिया है, तो तुम्हें अब परीक्षा देना चाहिए।” तो गया आवाज लगाई “भिक्षां देहि”, नारायण हरी! “तो आवाज सुनकर मां बाहर आई। देखा अपने पुत्र को। तो वह बड़ी होशियार थी उसकी मां। बोली”, “शाबाश बेटे! तुमने मेरा नाम रोशन कर दिया। मैं तुम्हें भिक्षा देती हूँ। कि मशहरी में सोना, कभी मशहरी से बाहर न सोना। गांठ लगालो लंगोटी की छोर में। गांठ लगालो, याद रखना। दूसरी भिक्षा हम देते हैं, कि मोहन-भोग खाना और कुछ न खाना। और तीसरी भिक्षा हम देते हैं, कि किले के अन्दर रहना, बाहर कभी न जाना। तीनों की गांठ बांध लो, लंगोटी में। भूल न जाना” “तो गोपीचन्द बोला,” माताजी! मैं इसका अर्थ नहीं समझ पाया। मुझे कुछ मिलना चाहिए।” माता ने कहा, ‘जा तुझे जो मिलना चाहिए मिल गया। अब इससे बड़ी और कोई भिक्षा नहीं हो सकती। जा तेरे

गुरु बाबा बातएँगे।’ जब पहुँचा गुरुबाबा के पास, तो बोले, क्या भिक्षा लाये हो ? तो बोले, ये गांठें लगी हैं लगोटी में। मेरी माता ने भिक्षा में ये ये बातें दी हैं। तो गुरु गोरखनाथ बोले, ओह! तेरी माता तो बड़ी अच्छी है। जानते हो इसका मतलब क्या है ?’ मच्छर दानी में सोने का मतलब है, कि जब खूब नींद आए तब सोना चाहिए। रात दिन भजन करे और जब नींद के मारे रहा न जाय, तब सोए। तो फिर चाहे मच्छर काटे, चाहे गर्मी लगती रहे, चाहे सर्दी लगती रहे, चाहे ढेला में पड़े रहो, चाहे कंकड़ गड़े-पता न लगेगा, गहरी नींद में। यह मच्छरदानी में सोना है। क्योंकि अब तुम राजा के लड़के नहीं हो, बैरागी के लड़के हो। बैरागी के पास कुछ होता नहीं। कभी गद्दा में सोना पड़ेगा, कभी ढेले में सोना पड़ेगा, कभी नंगा रहना पड़ेगा, कभी कुछ भी नहीं। अपने काबू में नहीं भगवान के काबू में हो गये। महात्मा को तो कोई इच्छा होती नहीं। यह मच्छरदानी में सोना है। कच्ची नींद में सो जाएँगे तो सर्दी लगेगी, गर्मी लगेगी। फिर इच्छा होगी ये चीज हो जाये गद्दा हो जाये। इच्छा होगी-“इच्छइ काया, इच्छइ माया इच्छइ जग उपजाया।” यह सब बीमारी आ जायेंगी। और जब अपने से भेजे भगवान। “उरप्रेरक रघुवंश विभूषन”। अपने से आये। खाना आये। कपड़ा आए। तब वह चाहिये। उसका इस्तेमाल करना चाहिये, उसमें माया नहीं है। और जो हमारी इच्छा से आएगा, वह माया बन जायेगी। इसलिए, हम अनपेक्ष कहा करते हैं। इच्छा-रहित रहना चाहिये। इच्छा जीव का काल है। इच्छा, कभी साधु को नहीं करनी चाहिये। तो मच्छरदानी में सोना है कि जब नींद आवे। तब सोना। भजन करते-करते जब फिर रहा न जाय, तब सोवे। तब फिर मच्छर रहित, वायरस रहित, कीटाणु रहित, नींद आती है। यह महात्माओं का तरीका है।

दूसरा बताया, मोहन-भोग का भोजन करना। तो साधन होता है तब, जब न कम खाओ, न ज़्यादा खाओ। साधन होता है-जब खूब भूख लगे, तब खाए। रहा न जाये। भोजन की याद आये, तो मुंह में पानी आ जाये-ऐसी जब भूख लग जाये, तब फिर सूखी रोटी मिल जाय, अमृत हो जायेगी। जो मिल जाय, अच्छा लगेगा। और आधी भूख है, आधी नहीं, तो फिर कहेंगे, भोजन ठीक नहीं बना है क्या ? क्यों ऐसा हुआ ? क्योंकि भूख नहीं है। इसलिए भयानक भूख लगे, तो मन को अच्छा लगने वाला भोजन होता है। तो गोपीचन्द बोला “महाराज! ये तो बड़ी ऊंची बातें हैं। अगर मेरे जीवन में उतर जायें, तब तो मैं आपका सच्चा सेवक बन जाऊँगा। तो महात्मा ने कहा, यह मैंने नहीं, तुम्हारी माता ने दिया है।’ बोले एक और गांठ है। बोले हाँ, तुम्हारी माँ ने कहा, कि किले में रहना। तो ये दसो इन्द्रियां अपने विषय-रूप, रस, गंध किसी में निकल गयीं, तो समझो छेद हो गया। वहीं से दुश्मन

अटैक कर देगा। त्वचा स्पर्श में निकल पड़ी, जिह्वा रस में निकल पड़ी और जहाँ बाहर गये-मारे गये। किले के बाहर, दुश्मन खड़े हैं। किले के भीतर सुरक्षा है। इसलिए तुम किले के बाहर न जाओ। इन्द्रियजीत बनो।

### “जितेन्द्रिय मनोबुद्धिर्मुनिः मोक्ष परायणः”

मोक्ष का परायण कौन होता है? जो जितेन्द्रिय हो। कायदा यह है। साधक को इसके लिए गुरु की शरण में जाना चाहिये-समर्पण हो बस, एक बात। जब हम समर्पित हो गये तो वहाँ चिंता करने की ज़रूरत नहीं रहती। वह (भगवान) जानता है, कि साधक के अन्दर कहां-कहां चोर बैठे हैं। सूक्ष्म शरीर में, कारण शरीर में, कहाँ-कहाँ घुसे बैठे हैं-कहाँ खाते हैं, कहाँ बनाते हैं, कहाँ सोते हैं और कहाँ सजातीय पड़े हैं। कहाँ कैसे, क्या है? ये तो तब तक प्लानिंग होती है, उत्सुकता होती है कि गुरु करेंगे, पूछेंगे, समझेंगे ये करेंगे वो करेंगे। जब तक हम समर्पित नहीं हो जाते। समर्पित का मतलब ही यही है, कि अब कोई गुंजाइस नहीं रही। अब लेबिल पार हो गयी। अब भेद नहीं रह गया। और जब तब यह विश्वास नहीं है, कि गुरु को ज्ञान है, तब तक वह समर्पित नहीं हो सकता। इस तरीके से वह समर्पित तभी होगा, जब इधर बोध होगा, उधर गुरु कब्जा करता जायेगा। इधर से समझ काम करती जायेगी, उधर क्षेत्र में कब्जा होता जायेगा। एडजस्टिंग होती जायेगी, होती जायेगी, होती जायेगी। और प्राप्ति होजायेगी। उसको हम कई ढंग से बताते हैं-आल राउन्डलिविंग दु नो। कई कई ढंग से यह है, कि अगर समर्पण हो जाता है, तभी ज्ञान होना कहा जायेगा। जब कि गुरु साथ-साथ जायेगा, बतायेगा, दिखायेगा- सुनाएगा, पहचान करायेगा, स्वरूप का ज्ञान करायेगा, इतना दायित्व है। इसलिए उसे तो साथ-साथ रहना ही है, उसके बगैर गुजर नहीं है। अपनी क्षमता नहीं हैं। एक दीपक कमरे में जला दो, तो सबको तो प्रकाशित करेगा-लेकिन उसके नीचे अंधेरा है। दीपक खुद अपना अंधेरा नहीं मिटा सकता। इस तरीके से दूसरे दीपक की ज़रूरत होती है। गुरु की ज़रूरत होती है। जब तक संकल्प व्याख्यान रहेगा, तब तक तर्क रहेगा और जब मूर्त बयान होगा तब बोध होगा।

तीन हिस्सा हैं। जब तक व्याख्यान होता रहेगा गुरु का, तब तक शिष्य के मन में तर्कों का जाल बिछा रहेगा। फिर जब इसका अन्त हो जायेगा। तब बाद में, जब वैचारिक ढंग से गुरु का व्याख्यान आएगा-विचार से, तब तुम्हारी शंकाएं (तर्क) शांत होने लगेंगी। और जब सही चीज़, भावना के द्वारा आ जायेगी, संकल्प के द्वारा आ जायेगी और इनर्जी के द्वारा जब कम्युनिकेशन होगा, तब तुम्हें बोध हो जायेगा। तीन



स्तर हैं इसमें। यह बहुत बड़ी चार्ट है। अगर इसमें पुस्तक लिखी जाय, यह पुस्तक बनायी जाय, तो “मानस बोध” नाम की “मानस बोध” शीर्षक देकर, एक पुस्तक बन सकती है। और उसमें इस सबका उल्लेख किया जाय, तो एक बहुत बड़ी पुस्तक बन सकती है। इसका शीर्षक हो सकता है “मानसबोध”। हमको पहले ऐसे भाव आये थे, लेकिन हमने मना कर दिया कि हम नहीं करेंगे। हम ऐसा नहीं सोचते उसको। यह गलत है। बस हम अपना मानते हैं। पहले कागज नहीं था। हजार दो हजार साल पहले, कागज वगैरह नहीं बनते थे। तो यह शास्त्र कैसे लिखा जाता था। कोई कहता है, भोजपत्र में लिखा जाता था। कोई कहता है कि कपड़ा में लिखा जाता था। कोई कुछ कहता है। लेकिन हम कहते हैं कि यह पुस्तक में लिखा, काम नहीं करेगा। जैसे आज, कागज में लिखा नहीं कर रहा है। प्रैक्टिकल बात महात्मा लिख देते हैं—कागज पर, वह थ्योरिटिकल होकर रह जाता है। प्रैक्टिकल में तो वही काम करेगा—श्रुत और स्मृत। जब हमने समत्व में अपने को ढाल दिया, और ढाल करके अनुभूति प्राप्त की। वह हमारी सुरत में आ गई। जो कागभुसुण्डि हमने पहले बताया था, उसका नाश कभी होता नहीं, वहाँ मूर्धा के ऊपर जब सुरति आ गई। जो हमें अनुभूति हुई, जो हमारा स्वरूप निखर कर सामने आया, वह सब उसमें रख लिया। स्मृति। और योग्य पात्र मिले, उसे बता दिया सुनाया और उसे स्मरण कराया। बस यही शास्त्र है—इससे ज़्यादा नहीं। श्रुति और स्मृति। अध्यात्म विद्या अनुभूति का विषय है। इसमें वाचिक ज्ञान या शाब्दिक ज्ञान व्याख्यान का महत्व नहीं है। इसमें तो करके देखने की बात है। इसमें चलकर पहुंचने का विधान है। गुरु और शिष्य के बीच का आदान-प्रदान है। अनुभव-ज्ञान का जो विषय है, पुस्तकों के पढ़ने-सुनने से उसका बोध नहीं होता। बौद्धिक ज्ञान से यहाँ काम नहीं चलता। इसके लिए महात्माओं ने व्यावहारिक साधना का उपाय निकाला है। उसे अपनाना चाहिए। और अनुभूतियाँ बढोरना चाहिए।

साधक के ऊपर सद्गुरु का सम्पूर्ण अधिकार होता है। जो साधना करने वाला है, उसको साधक कहते हैं। और जो साधना करने वाला होगा, बिना गुरु के संरक्षण के, साधना नहीं कर सकता। साधना गाइड के संरक्षण में होती है, गुरु के संरक्षण में होती है। कोई भी विद्या, बिना गाइड या गुरु के नहीं होती। जबकि साधारण से साधारण विद्या होती है, वह भी। तो यह तो अध्यात्म विद्या है। यह बगैर गुरु के नहीं मिलती और जब गुरु के संरक्षण में साधक साधना करता है तो जो उसका स्वरूप है—वह माया के जाल, मल-विक्षेप के आवरण से, ढका हुआ है। साधना वह है कि वह मल विक्षेप आवरण को हटा दे साधना से, और सद्गुरु की दया से, बताये



हुए मार्ग में चलने से। तो जब साधक, साधना पूरी करता है, तो वनथर्ड गुरु की कृपा का है, वनथर्ड साधक की साधना का है और वनथर्ड अनेक जन्मों के पुण्यों का प्रताप है। उसे पुण्यों का प्रताप भी कह सकते हो, ईश्वर की कृपा भी कह सकते हो। बहुत से लोग इसे ईश्वर की कृपा भी कहते हैं। लेकिन पुण्य, ईश्वर कृपा बन जाता है। इसलिए ये तीनों वनथर्ड- वनथर्ड मिलकर साधक को निर्मल बनाते हैं। तो उसके ऊपर से माया का कन्ट्रोल समाप्त हो जाता है। बजाय विजातीय के जब सजातीय अध्यक्ष हो जाता है, तो गुरु उसे दीक्षान्त मन्त्र देता है। और उसको स्वरूप में मिला लेता है। जो उसको प्राप्त है, वह उसको प्राप्त करा देता है। उसका नियन्त्रण स्वयं के पास आ जाता है। फिर उसे हर प्रकार के कम्युनिकेशन्स होने लगते हैं। वाह्य जगत के भी आते हैं, सूक्ष्म जगत के भी आते हैं, कारण जगत के भी आते हैं। और सबका प्रतिउत्तर देते हुए, वह सबसे निर्मल रहता है। स्थूल जगत में रहते हुए स्थूल से मतलब नहीं रखता। सूक्ष्म जगत से संचार करता है, और संचार के संस्कार नहीं पड़ते। कारण जगत से अनुभूतियाँ, अन्तर्जगत में प्रसारित करता है और निर्लिप्त रहता है। इन तीनों देहों का वह दृष्टा बन जाता है-इन अवस्थाओं का वह साक्षी बन जाता है। ऐसा जब उसका स्वरूप बन जाता है, तो उसके जितने अवयव हैं, और भी जो उसके भेदभाव हैं, उसकी जो क्रियायें हैं, उसमें सकुशल अपनी क्षमता पा चुका होता है। जब ऐसे ढंग का साधक हो जाता है। वह साधक नहीं रह जाता। उसके नामकरण का रूपान्तर हो जाता है-उसे सिद्ध पुरुष कहते हैं। ऐसी कोटि के जो होते हैं, उनमें एक रेखा और चलती है, तो फिर अन्जान योगी बोला जाता है, फिर और आगे युक्तयोगी कहा जाता है। और फिर एक और कोटि आती है, तो फिर राजयोगी होता है-फिर सद्गुरु बन जाता है। फिर दूसरे को देने की क्षमता आ जाती है। यह ऐसी प्रणाली है।

तीन प्रकार के साधक होते हैं-भावत्व वाले पूर्णत्व वाले और शून्यत्व वाले। शून्यत्व वाले शून्यत्व की अनुभूति प्राप्त करते हैं। भावत्व वाले भावत्व की अनुभूति प्राप्त करते हैं। लेकिन इनकी परम्परायें नहीं चलतीं। शून्यत्व वाले परम्परा कायम नहीं करते। केवल पूर्णत्व वाले की परम्परा कायम होती है। इसलिए उसको राठ कहते हैं। और वह समसुरा सम्बन्धित अनुभव लेबल में कम्युनिकेशन करता है। और मनमानी करता है। मस्ती काटता है। और नशे में झूमता रहता है। अगर होश में आ जाय तो गड़बड़ा जाय-बेहोश रहना पड़ता है। उसका मन मंसूर हो जाता है-

**‘कहे मंसूर मस्ताना ।**

ए हक दिल मैंने पहचाना ।

वही मस्तों का मयखाना ।

उसी के बीच आता जा ।।’

कभी तो मिलेगा। नशा चढ़ना चाहिए। क्षमता आना चाहिए। इस नशे का महत्व है। इसको कहते हैं- समाधि। समत्व के नशे के आदी। भाँग के आदी नहीं, गांजा के आदी नहीं, समत्व के आदी। हाँ तो आज देखो तुम लोग टी वी या अखबार तो यही सब समाचार भरा पड़ा है कि- सफेद प्वाइजन सबको मारने के लिये तैयार है। आज कल हजारों किस्म के मादक पदार्थ बन गये हैं, लोग नशा करते हैं। एक किलो एक करोड़ का मिलता है। बड़ी तेज़ी से संसार में फैल गया है। यहाँ सब जगह भर गया है। इंडिया इसका केन्द्र बन गया है। दूसरे देशों से ला ला कर ढेर लगा रहे हैं। रोज करोड़ दो करोड़ दस करोड़ का मादक पदार्थ आ रहा है, और सब खाते-पीते हैं। रहा ही नहीं जाता। इसमें हो गया है आकर्षण। चुम्बक की तरह। जैसे चुम्बक लोहे को खींचता है। ऐसे वह अट्रैक्सन (आकर्षण) करता है। क्योंकि नशे में यह हमारी जो सेंस (संज्ञान) है, कान्सेस (चेतना) है, विचार है, यह पकड़ में आ जाता है। दिमाग निष्क्रिय हो जाता है। जहाँ निल (रिक्त) हो गये, तो इतना आनन्द आता है कि मानो स्वर्ग में पहुँच गये। जो हम दिन भर खेलते-खाते, हंसते-बोलते, बताते हैं तो इसका आदमी को बड़ा टेंशन (तनाव) बन जाता है। तो बिजी (व्यस्त) होकर ये सब पार्ट्स (अवयव), हमारे कमजोर हो जाते हैं। जर्जर हो जाते हैं। तो यह नशा जो है मस्तिष्क की नशों को निष्क्रिय कर देता है। हम विचार-शून्य हो जाते हैं। मस्तिष्क की एक्सटर्नल (बाहरी) और इन्टर्नल (भीतरी) दोनों नशे फ्री हो जाती हैं। तो शून्य हो जाते हैं। तो आनन्द ही आनन्द अनुभव होता है। और फिर जब नशा उतरा तो सक्रिय हुआ ब्रेन, तो फिर उसी की याद आती है। तो बार-बार नशा करता है, उसके बिना रहा नहीं जाता। यह जानते हैं कि हार्ट फेल हो जायेगा, हम मर जायेंगे। तो भी नहीं मानते। हम यह बता रहे थे कि इतनी क्षमता है इसमें। सर्वस्व नष्ट हो जाता है। काम का नहीं रह जाता आदमी। लेकिन नशा करने को नहीं मानता। तो जैसे यह साधारण नशा है। ऐसे ऐसे हजार नशे के बराबर वह परमात्मा का नशा है, जिसे लग गया वह छूटता नहीं। यह समत्व का नशा हो गया हमें, हमारा मन अब इसके बिना रह नहीं सकता। किसी काम में नहीं जायेगा। इसी में रहेगा। इसके आदी बन जाओ। इसकी हैविट बन जाय। बस, मार ले गया बाजी।

इस तरीके से वह बदलाव आता है। तो सबसे पहले, साधक को साधना करना है। अनपेक्ष हो जाय, अनारम्भ हो जाय, अनासक्त हो जाय, इच्छारहित हो जाय। तब जितनी हरकत तुम्हारी होगी, पूंजी बनती चली जायेगी। भक्ति बनती चली आयेगी। फिर वेस्ट नहीं जायेगा-व्यर्थ नहीं जायेगा। और अगर तुम अनपेक्ष नहीं होते। इच्छाओं का दमन नहीं करते। आरम्भ करके तुम्हारी क्रियायें हो रही हैं, तो तुम जो भजन करते हो तुम्हारे अंग नहीं लगेगा। वह भजन व्यर्थ चला जायेगा। वो इच्छायें, उसे खर्च करती जायेंगी। सब खतम हो जायेगा। कितना भी तुम कमाओ, अगर तुम्हारा लीकेज हो गया है, खर्च डबल है, कमाई कम है, तो कर्ज बढ़ता जायेगा, बढ़ता जायेगा, तुम दबते चले जाओगे। इसलिए हम सबसे बढ़िया बात यही कहते हैं, कि अनपेक्ष हो जाओ, इच्छारहित हो जाओ। मन और शरीर, किसी को दान कर दो। - भगवान कृष्ण ने आखिरी यही शब्द कहा। 18 अध्याय में कई तरीके बताये। और अर्जुन की समझ में नहीं आया। तो उन्होंने अन्त में कहा-

### **‘सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज’**

तुम मेरी शरण हो जाओ-बस फिर तुम्हें कुछ नहीं करना पड़ेगा। मैं सम्भाल लूंगा-‘योगक्षेम वहाम्यहम्’ तुम्हारे योगक्षेम की मैं रक्षा करूंगा। तुम्हें कुछ नहीं करना पड़ेगा। और अगर साधक ऐसा नहीं कर सकता, तो गुरु और परमात्मा कुछ नहीं कर सकता। ये सब ऐसे ही करते हैं, जैसे एक स्टूडेंट के पीछे एक प्रोफेसर। अगर उसकी रुचि है, सही पढ़ाई करता है, एडमिशन है- तो पढ़ाएंगे। और इनमें से कोई कमी है। नहीं रुचि है, नहीं एडमिशन है, क्षमता नहीं है-तो गुरु ताकता रह जायेगा। चेला अलग जायेगा, विद्यार्थी अलग जायेगा, गुरु बाबा अपना काम करेंगे, चाहे वह पास में ही बना रहे जिन्दगीभर। चाहे वह वेश बना ले। चाहे विद्यार्थी की ड्रेस चौगुनी अच्छी बना ले। कुछ फायदा नहीं होगा। इस तरीके से, इसके ऐसे कुछ नियम हैं। इसलिए समर्पण होना चाहिए। अर्जुन को जब तक समर्पण नहीं हुआ, तब तक यह विद्या नहीं बतायी। अभी तक तो थ्योरिटिकल बात थी। जब तक समझौता चलता रहा कि भाई लड़ाई न हो, डिस्कसन चलता रहा। यह थ्योरिटिकल बात थी कि पांच गांव दे दो-कौरवों से कहो। उसी में गुजर कर लेंगे। लेकिन जब उधर से सुई की नोक बराबर भी ज़मीन नहीं देंगे,- यह बात हुई, तो फिर युद्ध की तैयारी हुई। युद्ध कहो, चाहे भजन कहो, चाहे साधना कहो। काम एक ही है, नाम तीन हैं। भजन को युद्ध कह सकते हो, भजन को भजन कह सकते हो, भजन को साधना कह सकते हो। इसलिए जब साधना के लिए तैयार हो गए-अब तय हो गया कि युद्ध होगा, तब गीता की बात आ गई। अब साधक को गाइड करने की ज़रूरत है। अब साधक को

मार्गदर्शन की ज़रूरत है। अब साधक के सामने लक्ष्य को क्लियर करने की ज़रूरत है। जब सद्गुरु रूपी कृष्ण, अनुराग रूपी अर्जुन को, शरीर रूपी रथ में, इन्द्रियों के घोड़े जोड़ कर, मनरूपी लगाम को पकड़ कर ले आए मैदान में। तो फिर अर्जुन (साधक) देखता है कि इन-इन से मुझे लड़ना है। इनका त्याग, इनका त्याग करो, ए छूटै, इन्हें मारो, इन्हें मन से हटाओ, मारो। तो साधक घबड़ा जाता है। अर्जुन कहता है, कि मैं छुटपन में धूलभरा इनकी गोद में घुस जाता था-ये सब मेरे दादा, चाचा, मामा हैं-मैं इन्हें कैसे मारुं? तो कृष्ण बताते हैं, कि इन्हें मारो, मन से हटाओ, ये सब मरे मराये हैं, तुम हो जिन्दे। ये सब नश्वर हैं। यह शरीर तीनों कालों में नहीं है। यह मर है। तुम अमर हो। तुम अपने को सही एडजस्टिंग करो-गलत न सोचते रहो। जब वह समर्पण करता है, तो ईश्वर प्रसन्न हो जाता है। साधक प्रश्न करता है। गुरु भाषण करता है। और इस तरह से बनती है-गीता। गा शब्द गो नाम इंद्रियों का ता, त्याग। इन्द्रियों का विषयों से त्याग करा देता है।

फिर ये मोह दुर्योधन, दुर्बुधि-दुश्शासन, कर्मरूपी-कर्ण, भ्रम रूपी भीष्म और द्वैत का आचरण करने वाले द्रोणाचार्य आदि महान बलवान थे। ये सब पराकाष्ठा को प्राप्त करने वाले, बड़े-बड़े आदर्श महापुरुष थे, लेकिन ये पराकाष्ठा, ये सामाजिक-ये बाहर के आदर्श, जो साधक को फांसे हुए हैं, इन्हें खतम करना होगा-इनसे फायदा नहीं होगा। क्यों नहीं होगा? क्योंकि ये सब अत्याचारी के साथ हैं। ये उनका धान खाते हैं। ये उनके साथ बोलते हैं। ये सत्य के साथ कभी नहीं जाते। असत्य का साथ देते हैं। जब साधक का ध्यान लगता है। तो ध्यान रूपी द्रोपदी से, चित्तरूपी चीर को, दुर्बुद्धि रूपी दुश्शासन खींच लेता है। और ये लोग धर्मात्मा, कोई बोल नहीं पाता। इसलिए ये सब विजातीय योद्धा हैं। ये सजातीय नहीं हैं।

सजातीय योद्धा तो, धर्म रूपी धर्मराज हैं। भाव रूपी भीम है। अनुराग रूपी अर्जुन है। सत्य रूपी सहदेव है और नियम रूपी नकुल है। ये पुण्य (पाण्डु) से पैदा हुये हैं। इनको बोलने का अधिकार नहीं है। क्योंकि ये जुएं में हार चुके हैं। यह संसार असत्य का जुंआ हो रहा है। और सत्य पर चलने वाला हमेशा संसार की दृष्टि से हार जाता है। तो फिर

**‘हारे के हरिनाम’। अर्थात् हारे के नाम हरि।**

जब तक इससे नहीं हारेंगे। तब तक भगवान हमारे साथ नहीं हो सकता है। महान शक्ति हमको नहीं मिलेगी। और इसमें जो जीता हुआ है, संसार को कब्ज़ियाने में लगा है। उसे ईगो होगा और ईगो का सिर नीचा। उसे हारना होगा। और जो

क्षमा वाला है, उसे जीतना पड़ेगा। इस तरीके से, जो साधक यह सब समझकर एडजस्टिंग करते हैं, वो साधक, साधन की गतिविधियों को समझ सकते हैं। और अपने ऊपर आने वाला, जो माया का प्रभाव है, उसे हटा करके, उसकी जगह अपने अन्तःकरण का अध्यक्ष गुरु के स्वरूप को बना लेते हैं। और हमेशा-हमेशा के लिए, कल्याण को प्राप्त कर लेते हैं। साधक जैसे-जैसे एक एक कदम आगे बढ़ता है। ये भूमिका पहली, दूसरी, तीसरी, चौथी, पांचवी, छठी, सातवीं सब आने लगती हैं। शुमेक्षा, सुविचारणा, तनुमानसा, सत्वापत्ति, असंसक्ति, पदार्थाभावनी, और तुर्यगा ये सात भूमिकाएं होती हैं। ये पहली, दूसरी भूमिका निम्न श्रेणी की हैं। और तीसरी के बाद सत्वापत्ति में प्रवेश किया, तो हवा में उड़ने लग जाता है। उससे कुछ छिपा नहीं रहता है। उसे अन्तःकरण में एक करेंट मिल जाता है। एक ऐसी अलौकिक चीज़ आ जाती है, कि वह कुछ बताने लगती है। और वह सुन-सुन कर सुन-सुन कर मस्त रहने लगता है। फिर उसको ऐसा चस्का लग जाता है, कि बाहर आना नहीं चाहता। और अन्तःकरण में घुसता चला जाता है। और जब उसमें डुबकी लगा लेता है, तो उसमें इतना आनन्द आ जाता है, कि जो समस्याएँ सामने आती हैं, वो समस्याएँ आटोमैटिक, हल हो जाती हैं। यह सब कुछ है नहीं। जैसा हम देख रहे हैं। वैसा है नहीं यह। यह फिर दूसरे ढंग का दिखाई पड़ेगा। यह स्तंभवत् हो जाएगा। जैसे यह पोल (आकाश) है, ऐसा हो जायेगा। यह हमको नहीं दिखाई पड़ता। ये जो क्षेत्र दिखाई पड़ते हैं-हरे, पीले, लाल, ऐसा यह सब नहीं है। वह ऐसा है-स्तंभ, निर्मल। ऐसा है-हलन-चलन से रहित, स्तब्ध, पारदर्शी। इस तरीके से ठोस वस्तु देता है। वह नकली नहीं देता है। और उसमें इतनी सिफत आ जाती है कि कोई भी फितूर कोई भी दिक्कत अपने आप हल होती चली जाती है। उसमें यह प्रश्न नहीं उठता, कि फिर क्या होगा? उसमें तो एक सीधा सा है, कि कूद पड़े। गंगा में कूद पड़ा, तो फिर गंगा ही गंगा है- चारों तरफ हर गंगा। चारों तरफ एक रूप है। बस फिर कोई खतरा नहीं, जो कुछ भी सोचे, सोचने को कुछ नहीं मिलता। वहाँ तर्क का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। संकल्प और कल्पना का कोई प्रश्न ही नहीं है। यह तो सब जब हम अपने से करते थे, तब यह बीमारी थी। और जब हम किसी के हाथ की कठपुतली बनगये, तो फिर वह सब संभाल लेता है। फिर और किसी चीज़ की ज़रूरत ही नहीं।

मन एक बहुत सुन्दर यंत्र है। यह हम अपने विचार से बताते हैं। बहुत सुंदर यंत्र है। मन जिसका जितना ही चंचल होगा, उतना ही अच्छा है। साधक को साधन करने में, बड़ी से बड़ी आपत्ति आये, उसका साधन सबसे अच्छा है। जिसको कम से कम आपत्ति आये, उसका साधन अच्छा नहीं माना जाता। आपत्ति ही भलाई में

परिवर्तित होगी। परेशानी ही सुविधाओं के रूप में मिलेगी हमको। माया ही ईश्वर के रूप में ट्रान्सफार्म होने वाली है। बशर्ते साधक भजन करे। तो यदि भजन करना है, साधनाकरना है, तो मन जितना चंचल हो, जितना दौड़े, उसे अच्छा मानना चाहिए। बड़ी से बड़ी आपत्ति आए, विघ्न आए, बलात् दिक्कत आए तो खुश होना चाहिए। ऐसा स्वभाव बन जाना चाहिए। ऐसा स्वभाव न बने, कि विघ्न आए तो, चिल्लाए कि हे भगवान क्षमा करें, दया करें, ये विघ्न न आवें, मैं आपका भजन करना चाहता हूँ-तो फेल हो जाएगा। विघ्नों को पसंद करो। दुख को पसंद करो, तो सुख तुम्हारे पैरों में लोटेगा। और अगर सुख को पसंद करोगे, साधना करने जा रहे हो और सुविधा चाहते हो, तो तुम्हारा साधन अव्वल दर्जे का नहीं होगा। थर्ड क्लास का होगा। रद्दी किस्म का होगा। इसलिये साधन काल में-तुम कर रहे हो, और बलात् कोई विघ्न आ जाये, तो उसे बुलाओ। आओ भैया आओ। मैं आपका स्वागत करता हूँ, तुम खुशी से मेरे पास आओ। यह स्वभाव होना चाहिए-साधक का। जानते हो, जो दुख को देख कर रोता है, जो घबडाता है, वहाँ जाता है दुख। खुश होने वालों के, हंसने वालों के पास नहीं जाता है। जब हम दुख को देखकर हंसते हैं, तो दुख दूर खड़ा रह जाता है, क्योंकि हमने रास्ता प्रशस्त नहीं किया। जब हम दुख से डरेंगे, तो अटक कर देगा। और जब हम कहेंगे-आओ भाई आओ। तो फिर दबे पैर भागना पड़ेगा उसे। या तो ट्रान्सफार्म होकर, सुख बन कर आयेगा या भागेगा। क्योंकि हंसने वाला प्रसन्न होकर उसका स्वागत कर रहा है। यही एक तरीका है, जीतने का। यही एक तरीका है, साधना करने का। लेकिन यह तरीका जानते नहीं लोग। इसलिए हम कहते हैं, कि उल्टी दुनिया है-

### **‘उल्टा चलै सो औलिया, सीधा सब संसार।’**

उल्टा चलना पड़ेगा। यह लोहे के चना चबाना है। कठिन है, लेकिन यह करना ही पड़ेगा। तभी इच्छा का त्याग हो सकता है। पहले नहीं हो सकता। इच्छाओं का त्याग कब होगा? जब हम उल्टे हो जाएंगे। पहले सीधे थे, अब उल्टे हो गए। उल्टे कैसे हों? ऐसे कि दुख का स्वागत करो, सुख का त्याग करो। बस पैट बदल गया। सही लाइन मिल गयी। फिर संकल्प रूपी डिब्बों वाली इच्छा रूपी ट्रेन में बैठ जाओ, चिंतवन रूपी यात्री बन कर और हृदय रूपी प्लेटफार्म पर उतर जाओ। बस, वहाँ सब बना-बनाया मिलेगा, फिर सब काम हो जायेगा। इसलिए,

**किले में उलटि लडै सो सूर**

यदि समझ काम कर जाय तो इतना ज्ञान काफी है कि भगवान हमारे अन्दर है, और उसे देखने के लिए माया के आवरण को हटाना है। तो इसके लिए बाहर से मुह फेर लेना है। इस कायारूपी किले के अन्दर साधनारूपी संग्राम में डटना है।

इसलिए साधक को शास्त्रों की जानकारी के चक्कर में बहुत न पडना चाहिए। क्योंकि इनमें मत मतांतर भरा पडा है। जो आदमी इस जाल में फँस गया, फिर तर्क वितर्क में पड़ जाता है और उसकी भावना का वेग क्षीण हो जाता है। श्रद्धा जम नहीं पाती। भ्रमित होकर साधन भजन छोड़ बैठता है। थ्योरिटिकल बातों में उलझा रह जाता है। इसलिए पुस्तकों के पक्ष में हम ज्यादा नहीं रहते। जो कुछ अपनी समझ में आ गया है उसे लेकर चलो, यही ठीक है। ज्ञान इतना ही काफी है कि भगवान सत्य है, संसार असत्य है। तो इसे छोड़ें, उसे पकड़ें। अब उतना और जान लिया जाय कि वह परमात्मा मिलेगा कैसे? तो गीता रामायण सबमें लिखा है कि वह तुम्हीं में है। बाहर दूढ़ने कहीं जाना नहीं। अब अन्दर की प्रक्रिया जानने की जरूरत आ गई। तो जब किसी भाग्यशाली के अन्दर उत्कण्ठ जाग्रत हो जायगी तो किसी संत सदगुरु का आश्रय उसे मिल जायगा। महात्मा लोग शास्त्र के तर्क वितर्कों से अलग प्रैक्टिकल साधना की युक्ति बताते हैं।

तुलसीदास महात्मा थे। इनकी ख्याति से परेशान होकर शास्त्रीय पंडितों ने कहा, चलो तुलसीदास से शास्त्रार्थ करेंगे-बड़ा ज्ञानी बनता है। तो दस पांच पंडित एक बैलगाड़ी भर वेदान्त और अन्य शास्त्रीय पुस्तकें लादकर शास्त्रार्थ करने जा रहे थे तुलसीदास के यहाँ। तुलसीदास को पता लग गया तो उन्होंने अपने एक चेला को कहा, कि जाओ जिधर से ये लोग आ रहे हैं, रास्ते के बगल में बैठकर शौच करना और राम राम भी कहते जाना। यही किया उसने। जब पंडित लोगों ने देखा, तो बोले, अरे! मूर्ख! क्यों भगवान के नाम को अशुद्ध कर रहे हो इस तरह से। तो उसने कहा मेरे गुरुबाबा तुलसीदास जी ने तो ऐसा ही बताया है। तब उन पंडितों ने उसे फटकारा। तो उसने कहा, कि जो नाम हमारे मन को, जीवन को, हमको शुद्ध करने की क्षमता रखता है-क्या वह भी अशुद्ध होता है कभी? क्या पारस कभी लोहे को छूने से लोहा बनता है? वह तो लोहे को सोना बना देगा, फिर भी पारस ही रहेगा। तो फिर वहीं से पंडितों की गाड़ी लौट पड़ी-नहीं गए तुलसीदास के पास।

तो शास्त्र तो अनेक हैं। कोई ईश्वर को मानता है। कोई शास्त्र ईश्वर को नहीं मानता। चार्वाक नहीं मानता अनीश्वरवाद कहते हैं इसे। तो यदि इस मतवाद में फँस गए तो जो थोड़ी बहुत मन के अन्दर श्रद्धाभाव की पूंजी है, वह भी चली जायगी और फिर कुछ हो नहीं पाएगा।



सिद्धान्त तो इतना ही है कि परमात्मा एक है, वह आत्मारूप में हमारे अन्दर बैठा है, उससे हम मिलें-हो गया दर्शन। इतने में ही मुक्ति है। और है क्या ? इसलिए जिन्हें ईश्वर की आराधना करना है, ईश्वर के रहस्य को जानना है, आत्मकल्याण करना है, वे इस मत मतान्तर में नहीं पड़ते। वे लोग करने में जुट पड़ते हैं। यही अच्छा है। जो सबमें व्यापक एक रस अद्वय परमात्मा है उसे अपने में सबमें सम्यक् रूप से देख लिया जाय उसकी अनुभूति हो जाय। इतने से ही माया का निषेध हो जाता है। इतने में ही भक्ति मिल जाती है। और कुछ तो है नहीं। हाँ करना तो पड़ेगा।

तो भाई,

**जबै चेत करै तबै सुधरै।**

आदमी पतित तो है ही-माया के वशीभूत तो है ही। तो अगर समझ काम कर जाय तो जैसे तैसे इस संसार के जुआ को कंधे से फेंक कर निकल भागे। भगवान की शरण पकड़ ले। और इन सब बाहरी बातों का बहुत महत्व नहीं। समाज के नियम कानून साधक के लिए बड़ी बाधा हैं।

‘लोक वेद कुल की मर्यादा यहै गले की फाँसी।’

इसलिए साधक इस दुनिया की ओर से मुंह फेर लेता है।

हरिः ओम